ॐ

शान्तिचरितम्

नव नाथ स्वरूप दर्शन

योगी नरहरिनाथः शास्त्री

ॐ आत्मा खलु विश्वमूलम्

गोरक्ष-ग्रन्थ-मालायां शततमं पुष्पम् १००

शान्ति-चरितम्

(नरहरि-विरचितम्)

तमादिनाथं शशि-खण्ड-मण्डनं, मुनीन्द्र-मत्स्येन्द्रसुमासुतं ततः ॥
स-राम-गोरक्षमलक्ष्य-विग्रहं, प्रणम्य तच्छान्ति-चरित्रमारभे ॥ १ ॥

चन्द्रशेखर भगवान् आदिनाथ शिवको, उमापुत्र मुनीन्द्र योगीन्द्र मत्स्येन्द्रनाथको, अलक्ष्यविग्रह अयोनिशङ्कर शिवगोरक्षनाथको तथा रामनाथपन्थके प्रवर्तक परशुराम एवं मर्यादापुरुषोत्तम रामचन्द्रको नमस्कार कर शान्तिचरित्र (परम तपस्वी श्री शान्तिनाथ जी योगी का चरित्र) लेखन प्रारम्भ करता हूँ ।

बभूव गोरक्ष-पदाब्ज-षट्पदः स रामनाथः प्रथितः प्रथीयसा ॥
महायशा योगबलेन भूतले, तदीय-शिष्याः क्रमशोऽभवन् यताः ॥ २ ॥

'आदिनाथ गुरु सकल सिद्धांचा' कथनानुसार इसी आदिनाथ शिवयोगि-गुरु-परम्परामें भगवान् गोरक्षनाथके चरण कमल युगलके मधुकर, विपुल योगबलशाली, महायशस्वी श्रीरामनाथ हुए, जिनके अनेक निष्ठावान् शिष्य हुए ।

तदन्वये योगिवरोऽक्षरो-भवत् स नौहरादेत्य विनेय-संयुतः ॥
यतिः सुरत्राणपुरेऽक्षरे रतस्तदीय-शिष्योऽजनि देविनाथकः ॥ ३ ॥

सिद्ध रामनाथके शिष्यान्वयमें योगिवर अक्षरनाथ अक्षर ब्रह्ममें निरत हुये, वे मरुस्थल बीकानेर नौहरसे शिष्य सहित आकर सुलतानपुर में रहे । उनके शिष्य सिद्ध देवीनाथ योगी हुए ।

तदीय-शिष्यश्चतुरस्ततोऽप्यसौ बभूव मौञ्जीति ततो हराह्वयः ॥
हरस्य शिष्यो गिरिधारिनाथको ययौ सिसायावसथं सनाथयन् ॥ ४ ॥

देवीनाथजीके शिष्य चतुरनाथ हुए और उनके शिष्य मौजीनाथ हुए मौजीनाथजीके चेले हरनाथजी हुए । हरनाथजीके शिष्य गिरिधारि-नाथजी हुए। वे सुलतानपुरसे सिसाया गये ।

समाधि-सम्बुद्ध-विवेक-दीपतस्त्रयी-सरःस्वैर-विहार-हंसतः ॥
सतां शरण्याद् गिरिधारिनाथतो यथार्थतो द्वारवतीश्वरोऽभवत् ॥ ५ ॥

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि द्वारा सम्यक् प्रबुद्ध विवेकमय दीपकवाले, ऐसे वेदत्रयीमय सरोवरमें हंस होकर विहार करनेवाले, तथा सज्जनोंको शरण देनेवाले, योगिराज गिरिधारिनाथके शिष्य द्वारिकानाथके तुल्य द्वारिकानाथ हुए।

समस्त-शास्त्रार्थ-विचार-पेशलो-यमादि-योगाङ्ग-विधूत-कल्मषः ॥
शरीरिणामत्यर्थसमर्थन-क्षमः क्षमाधरोऽबन्ध्य-रुषा दुरासदः ॥ ६ ॥

वे द्वारिकानाथ सर्वशास्त्रोंके अर्थोंका विचार करनेमें कुशल थे। जिनका उपदेश धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष-परक ही होता था। यम नियमादि योगाङ्गोंसे जिनके कलुष निवृत्त होगये थे। क्षमाशील होते हुए भी कारणवश जिनका कोप असह्य था। इसीसे पापी लोग उनके समीप आनेमें शङ्कित होकर रहते थे।

ततोऽभवद् भक्तिमतां पुरस्सरः सदा सदाचार-विचार-तत्परः ॥
परम्परा- प्राप्त-गुरूपदेशतः स शान्तिनाथः प्रमथेश-शान्तधीः ॥ ७ ॥

नाथ गुरु सम्प्रदायसे अनवच्छिन्न रूपेण प्रचलित गुरूपदेशमें गरीयसी श्रद्धा रखनेवाले श्रीद्वारिकानाथके शिष्य शान्तिचरितके नायक तपोमूर्ति श्रीशान्तिनाथ योगी हुए हैं एवं शिवगोरक्षभक्तोंके अग्रणी और सदैव सदाचारके विचारमें तत्पर रहते हैं। जिनकी शान्ति-प्रधान बुद्धि शिवशान्तिके तुल्य है।

प्रधान-शाखे चतुरस्य शिष्ययोरिलायचीनाथक-मौञ्जिनाथयोः ॥
क्रमेण देवास-पयोलयालयौ स शीलनाथः स च शान्तिनाथकः ॥ ८ ॥

चतुरनाथजीके शिष्योंकी दो प्रधान शाखायें हैं। इलाइचीनाथकी शाखा देवास सिद्ध शीलनाथजीकी। मौजीनाथ (मौञ्जीनाथ) जीकी शाखा पयाला सिद्ध शान्तिनाथजीकी।

गुरूपदिष्टेन पथा शनैः शनैः समाधि-विद्यामधिगम्य गामिमाम् ॥
सनाथयन् पुण्य-पदैः पदे पदे चिरं स बभ्राम हिताय देहिनाम् ॥ ९ ॥

वे गुरुके उपदेश दिये मार्गसे शनैः शनैः समाधिविद्याको प्राप्त कर

प्राणियोंके हितार्थ पुण्यपदोंसे पद-पदमें धरित्रीको सनाथ करते हुए चिरकाल पर्यन्त भूमण्डलका भ्रमण करते रहे।

स्वयं स योगाग्निमयो महावशी परोपदेशाय कृताग्निसेवनः ॥
शिवात्म-तीर्थोदक-शुद्ध-मानसः समस्त-तीर्थेषु ममज्ज धर्मवित् ॥ १० ॥

आपने योगाग्निसे पवित्र होते हुए भी लोककल्याणके लिए अग्नि-सेवनमय पञ्चाग्नि तप किया। आत्मज्ञानमय शिवतीर्थोदकसे मन शुद्ध था। तथापि लोकसङ्ग्रहबुद्धिसे धर्मज्ञ योगीने समस्त तीर्थोंमे स्नान किया।

अहिंसया योग- कृत-प्रतिष्टया वनेऽपि भीमे भ्रमतस्तपस्विनः ॥
न शान्तिनाथस्य समीपमागताः प्रहर्तुमुग्राः प्रभवो वनौकसः ॥ ११ ॥

अहिंसाकी प्रतिष्ठाके कारण भयङ्कर वनोंमें भ्रमण करते हुए भी किसी हिंस्र जीवके आप लक्ष नहीं बने। उनका पारस्परिक वैर भी शान्त होगया।

क्वचिद् बुधाः क्वापि निसर्ग-बालिशाः क्वचित् समृद्धाः क्वचिदत्र दुर्विधाः ॥
विधातुरालोक्य विचित्र-चेष्टितं प्रशान्त-चेता विरराम कौतुकात् ॥ १२ ॥

कहीं पण्डितोंका समाज, कहीं मूर्खमण्डली, कहीं समृद्धिशाली, तो कहीं दरिद्र, इस प्रकार परमेश्वरके विचित्र लीलाविलासको देख, शान्तचित्त होकर श्रीशान्तिनाथजी ने इतस्ततः भ्रमणको स्थगित किया।

जुगोप गोरक्ष-गुरुः समग्रा गा दिलीप-गोपाल-मुखाश्च योगिनः ॥
गवां प्रसादात् प्रभवन्ति पूरुषा इति प्रथां स्थापयितुं स ऐहत ॥ १३ ॥

तदनन्तर तपस्वी श्रीशान्तिनाथजीने मनमें विचार किया कि गौवों की रक्षा करनेके लिए भगवान् शिवने योगाचार्य गोरक्षनाथका अवतार लिया और विष्णुने योगेश्वर गोपाल कृष्णका अवतार लिया। एवं समग्र गौवोंकी रक्षा की। वशिष्ठ दिलीप हारीत बप्प द्रव्य सिद्ध गोरियादि योगिराजोंने भी गौवोंकी रक्षा की। गौवोंके प्रसादसे मनुष्य पुरुषार्थ साधनमें समर्थ होते हैं, इस सनातन प्रथाको स्थायिनी रखनेकी इच्छा की।

नियम्य गोरक्ष-पदे स योजयन् गवां कुलं गोपकुलावतंसवत् ॥
विशिष्य गोवर्धन बद्ध-पौरुषो वनं विवेशाथ वहन् गवां व्रजम् ॥ १४ ॥

गोवर्धनको उठानेवाले भगवान् जिस प्रकार गोवर्धन (गौवोंकी वृद्धि) में तत्पर हुए। उसी प्रकार गौवोंके व्रजको लेकर आपने भी वन में प्रवेश किया। गोकुलवर्धनार्थं गोसेवाव्रत धारण किया।

प्रविष्ट-मात्रस्य वनं तपोभृतः प्रभावतस्तस्य निरस्त-विप्लवम् ॥
स-शाद्वलं पल्लविताखिल-द्रुमं समुद्यतः पद्मसरो व भास्वत ः ॥ १५ ॥

सूर्य भगवान्के उदय होनेपर कमलोंका सरोवर जिस प्रकार विकसित होता है। उसी प्रकार तेजस्वी तपस्वी योगिराजके प्रवेशमात्रसे वन सर्वबाधारहित हरा भरा होकर शोभित हुआ।

न शान्तिनाथेन गृहीत- शान्तिना कृताभये घोरवनेऽपि जन्तवः ॥
स्वभावजं वैरमयुर्मनस्विना कथं दहेच्चन्द्र-शिलान्तिकेऽनलः? ॥ १६ ॥

चन्द्रकान्त मणिके समीपमें जैसे अग्नि भी शीतल होजाता है। वैसे ही गृहीतशान्ति शान्तिनाथ सिद्ध के समीप योगबलसे अभय किये गये घोर वनमें भी जन्मसिद्ध वैरवाले हिंस्र जन्तु भी शान्त हो गये।

यतो यतो याति स योगि-पुङ्गवः स-पङ्क्वं गोकुलमन्वगद्द्रुतैः ॥
रुतैः शकुन्ता अभिनन्दयन्ति तं शिवानुबन्धो हि कुतो न वन्द्यते? ॥१७॥

पवित्र पूज्य गौवोंके अनुगामी होकर आप जिस वनको विभूषित करते थे, वहीं पर पक्षिगण मधुर स्वरसे आपका स्वागत करते थे। क्यों न करें? परोपकारी कल्याणपरायण भाग्यशालीका सर्वत्र स्वागत होता है।

समं वने गोभिरपेत-साध्वसाः स-बाल-वत्सा हरिणी-गणा बभुः ॥
विहाय हिंस्रत्वमुपात्त-शान्तयः शनैर्विचेरुर्हरयोऽपि हारिणः ॥ १८ ॥

वन में गौओंके साथ निर्भय होकर बालवत्सों सहित मृगियोंके झुण्ड सुशोभित हुए। हिंसाभावको छोड़ कर शान्तिको ग्रहण कर सिंह भी मनोहर चालसे शनैःशनैः विचरण करने लगे।

असौ वने गा भुवने च भास्करः प्रवर्त्तयत्याहित-विश्व-मङ्गलाः ॥
दिने दिने स्वैर-विहार-हारिणीः क्रतु-प्रवृत्त्येक निदानमुज्ज्वलाः ॥ १९ ॥

जिस प्रकार सूर्यनारायण यज्ञ-सम्पादनमें कारणीभूत, उज्वल अपने किरणोंको विश्वके सर्वतोभावेन कल्याणार्थ प्रवर्तित करते हैं। उसी प्रकार आपने भी स्वच्छन्दचारिणी यज्ञप्रधानाङ्ग गौवोंको विश्वकल्याण के लिए प्रवर्तित किया।

उपस्पृशन् पुण्य-पयः पयस्विनी-पदानुगो गोषु स गोर-सिद्धवत् ॥
स्थले स्थले बद्ध-पदोऽकृतोभयं चकार कारुण्यमयं महावनम् ॥ २० ॥

निर्भीक होकर सिद्ध गोरिया सिद्धके तुल्य आपने अटूट गोसेवासे महावनको भी कारुण्यमय बना दिया। पुण्यतोया नदियोंके जलमें स्नान करते थे, जल-पान करते थे और प्रशस्त दूध देनेवाली गौवोंका पवित्र दुग्धपान करते थे, छायाके समान गौवोंके पीछे पीछे चलते थे, गौवें स्वच्छन्द गतिसे वनमें चरती थीं. गोसेवी सिद्धने स्थान स्थान पर आसन बाँधा, धूनि रमाई. जङ्गलको मङ्गलमय कर दिया।

क्वचिद् वृष-स्कन्ध-निषक्त-बाहुना क्वचित् स सद्यःप्रसवैश्च तर्णकैः ॥
क्वचिद् वने वत्सतरैस्तृणादरैः समस्त-भावेन बभूव केशवः ॥ २१ ॥

गोसेवक सिद्ध कहीं पुङ्गवके ककुदका उपधान करते थे, कहीं तत्काल प्रसूत गोवत्सों तथा मृगीशिशुवोंके साथ मनोविनोदार्थ खेल कूद करते थे. कहीं तृणाङ्कुर चरते हुए वत्सतरोंके साथ विचरण करते थे, एवं समस्त भावेन गोपाल कृष्ण ही हुए।

प्रसार्य गा वीत-भया भयानकेऽप्यभीकृते तत्र शमी शमी-तले ॥
स बद्ध-पद्मासन-संहृतेन्द्रियो बभौ जटाभी रविरंशुभिर्यथा ॥ २२ ॥

जैसे समस्त भुवनों में अपनी निर्भय गौवों (किरणों) को फैला कर सूर्यनारायण प्रसन्न गम्भीर मुद्रासे शोभित होते हैं। वैसे ही उस भयानक वन में भी अहिंसा प्रतिष्ठा से निर्भय गौवों (गायों) को मुक्त कर शमी (शम दम आदि साधन सम्पन्न) वशी सिद्ध शमी वृक्ष के तले पद्मासन बाँध कर समग्र कर्म ज्ञानेन्द्रियों का प्रत्याहार कर ध्यानस्थ होकर अंशुमालासे रवि के समान जटामण्डलसे वे योगी देदीप्यमान हुए।

समाधिमाधाय दिनानि तिष्ठतो बहूनि गावस्तदवस्थया स्थिताः ॥
न योगिनामात्मवतामुपाश्रये भवन्ति विघ्नाः खलु देह-धारिणाम् ॥२३॥

उक्त प्रकारसे बहुत दिन पर्यन्त तपस्वी योगीके समाधिस्थ रहने पर भी गौवें पूर्ववत् वन में चरता बैठती हुई सुख से रहीं, किसी प्रकार की बाधा उपस्थित नहीं हुई। हो भी क्यो ? आत्मवान् योगियोंके आश्रयमें देहधारियोंको बिघ्न बाधायें नहीं हुआ करतीं।

तदन्तिके केसरिणो दिवानिशं समं मृगैर्गोभिरलं चकाशिरे ॥
न बाल-वत्सेषु बभूव वैरिता मृगी-शिशोः सिंह-शिशोश्च खेलतोः ॥२४॥

शान्तिमूर्ति तपोधन शान्तिनाथजीके समीपमें दिन रात मृग तथा गौवोंके साथ सिंह प्रशान्त भावसे अत्यन्त सुशोभित हुए और सद्यः प्रसूत गोवत्सोंके साथ खेलते हुए मृगशावक एवं सिंहशिशुका भी वैरभाव नहीं हुआ।

तदाश्रमे क्वापि मयूर-सर्पयोः क्वचिन्मृगेन्द्र-द्विप-यूथ-नाथयोः ॥
परस्परं कौशिक-काकयोरपि प्रशान्तयोरास सखित्वमद्भुतम् ॥२५॥

उस शान्तिमय शान्तिनाथाश्रममें आजन्म वैरी मयूर और सर्प की, मृगेन्द्र और गजेन्द्र की, उल्लू और काक की, भी परस्पर अद्भुत मित्रता थी। क्योंकि अहिंसा-प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः।

चितस्य गोधूलि-लवैः समङ्गलैर्जटा-भृतो वल्कलिनोऽस्य कुण्डिनः ॥
नियच्छतो वाचमपीच्य-रोचिषः शुचौ रवेर्मण्डलवद् वपुर्बभौ ॥२६॥

मङ्गलमय गोधूलीके लवोंसे आचित. जटाधारी. वल्कलधारी. कमण्डलु-से मण्डित वाक्संयमी निसर्गसिद्ध प्राकृतिक उज्ज्वलरुचिवाले तपस्वी योगिराज शान्तिनाथजीका कलेवर ग्रीष्म ऋतुमें सूर्यमण्डलके तुल्य भासित हुआ।

असौ पयोव्रत उपासना-रतः शिवात्म-गोरक्ष-पदोर्निरापदोः ॥
विवर्धयन् धेनु-कुलं धरा-तले समाः समासीदरुणांशु-सन्निभाः ॥२७॥

वे पयोव्रत धारण कर निरापद शिवगोरक्षनाथके पदपद्मोंकी उपासनामें रत होकर धरातलमें धेनुकुलकी वृद्धि करते हुए निरन्तर बारा वर्षों तक सम्यक् तप करते रहे।

निरन्तरं धेनु-पदानुबन्धिनो गृहीत-चित्तस्य दृढ़-व्रतस्य च ॥
स शान्तिनाथस्य तपस्यया तया तुतोष गोरक्ष-गुरुः कृपाकरः ॥२८॥

एवं प्रकार निरन्तर धेनुपदानुबन्धी गौवोंके अनुगामी गृहीतचित्त दृढव्रत जितेन्द्रिय परम तपस्वी श्रीशान्तिनाथयोगीकी उस तपस्यासे वे कृपाकर शिव गोरक्षनाथ सन्तुष्ट हो गये।

मृगाल-गौरीं जटिलां त्रिलोचनां तनु किशोरीं शशि-शेखरां श्रयन् ॥
अथैकदा स्वप्न-गतं जगाद तं समीक्ष्य गोरक्ष उपात्त-गो-व्रतम् ॥२९॥

तब एक रात्रिमें स्वप्नावस्थामें दर्शन देकर, गोव्रत (गोरक्षाव्रत) ग्रहण करनेवाले शान्तचित्त शान्तिनाथजीको, गौरवर्ण कमलनाल कोमल कलेवरवाले. केसरीजटाधारी. त्रिनेत्र. शशिशेखर. किशोर अवस्थामें स्थित शिव गोरक्षनाथने इस प्रकार कहा—

अलं व्रतैर्वत्स ! शरीर-शोषिभिस्त्वयि प्रसन्नोऽस्मि गवामुपासनात् ॥
तवाऽस्तु वाक्सिद्धिरकुण्ठिता गतिः स्थिरा मतिर्योग-समाधि-सिद्धये ॥३०॥

वत्स ! बस करो. शरीरशोषक कठोर व्रतोंको छोड़ दो. सर्वदेवमयी गौवोंकी उपासनासे तुमपर हम प्रसन्न हैं। तुम्हें वाक्सिद्धि हो. सर्वत्र अकुण्ठित गति हो. मति स्थिर हो. ये सब योगसमाधिकी सिद्धि के लिए हों।

वसन्ति गावः खलु यत्र पूजिता वसाम्यहं तत्र समस्त-सिद्धिदः ॥
समं सुरैः सिद्ध-महर्षि-पन्नगैर्वसन्ति गोऽङ्गेषु समग्र-देवताः ॥३१॥

यह बात लोकप्रसिद्ध है कि—जहाँ गौवें पूजित रहती हैं, वहाँ पर मैं बसता हूँ और समस्त सिद्धियाँ देता हूँ। क्योंकि गौवोंके अङ्ग-अङ्गमें समस्त सिद्ध ऋषि, मुनि, देवता नाग, तीर्थ पीठादि निवास करते हैं। गौ सर्वदेवतीर्थमयी हैं।

जयन्ति ते लोकमिमं तथा परं निरन्तरं गाः परिपालयन्ति ये ॥
यतोऽभृतं यान्ति निरस्य वासना न गो-व्रतादन्यदिहाऽस्ति मङ्गलम् ॥३२॥

जो लोग निरन्तर गौवोंका पालन करते हैं, वे लोग इस लोकको और परलोकको जित लेते हैं; जिससे समस्त वासनायें छोड़ कर

अमृत पद मोक्ष को प्राप्त करते हैं। इस लिए गोसेवाव्रतसे बड़ा इस लोकमें अन्य कोईभी मङ्गलकारक साधन नहीं है।

इतीत्थमादिश्य ययावदृश्यतां हिमांशुवन्नील-घने निशागमे ॥
अलक्ष्य-गोरक्ष उदीक्ष्य तं मुनिः स शान्तिनाथः सहसा व्यबुध्यत ॥३३॥

ज्योतिःस्वरूप अलक्ष्य निरञ्जन शिव गोरक्षनाथ इस प्रकार इतना आदेश और वरदान देकर निशागममें नीले मेघोंमें जैसे चन्द्रमा अदृश्य हो जाता है, उसी प्रकार अदृश्य हो गये। यह शिव-गोरक्षदर्शनात्मक स्वप्न भङ्ग होते ही वे मुनि शान्तिनाथजी सहसा जाग उठे।

अभूद् दशा लुप्त-मणेः फणीशितुः क्षणं तदीया व्यवधानतो विभोः ॥
नियम्य चेतो मुहुरद्भुतं वपुस्तदेव दध्यौ विधु-बन्धुरं वशी ॥३४॥

जिस प्रकार मणिके लुप्त होजानेपर फणीश्वर व्याकुल होता है; उसी प्रकार क्षणभरके लिए श्रीनाथ के अलक्ष्य होने पर आपकी दशा हुई। किन्तु वशी सिद्ध चित्तको निरुद्ध कर चन्द्रमण्डल तुल्य उसी अद्भुत दिव्य श्रीनाथकलेवरका ध्यान करने लगे।

अथो समुन्मील्य चिरेण चक्षुषी प्रयोज्य साधून् सुरभिष्वनुव्रतान् ॥
ध्रुव-व्रतोऽध्यास्य पुनर्ध्रुव-व्रतं ययौ स योगी तपसे वनाद् वनम् ॥३५॥

उसके अनन्तर चिरकालमें चक्षु खोलकर गोसेवामें अनुव्रती साधुवों को नियुक्त कर ध्रुवव्रत वे सिद्ध शान्तिनाथजी पुनरपि ध्रुवव्रत धारण कर उससेभी कठोर तपस्या करने के लिए उस वन से दूसरे वनको चल दिये।

अवाप्य वाक्सिद्धिमकुण्ठितां गतिं त्रिनेत्र-गोरक्ष-वरेण वर्धितः ॥
तुतोष नो मुक्तिमृते जितेन्द्रियो मनस्विनो नाल्प-पदाऽभिलाषिणः ॥३६॥

त्रिनेत्र गोरक्षदेवके वरदानसे वर्धित होकर वाक्सिद्धिको प्राप्त कर और अकुण्ठित गतिको प्राप्तकरके भी मुक्ति बिना श्रीशान्तिनाथजी को शान्ति और सन्तोष नहीं मिला। क्योंकि मनस्वी मनुष्य अल्पपदके अभिलाषी नहीं होते।

तपोऽनुकूलानि वनानि चिन्वतो दिनानि यातानि ततोऽस्य कानिचित् ॥
अथैकदा कश्चिदपास्य बान्धवानुपागतो दैव-वशादमुं युवा ॥३७॥

तदनन्तर उनके कुछ दिनतो तपोऽनुकूल तपोवनके परिशीलनमें ही बीतगये। इसीके मध्यमें अकस्मात् दैववशात् एक युवक अपने बान्धवोंको त्याग कर उन योगिराजके शरणमें आ गया।

जटाधरं कुण्डलिनं कमण्डलु-सनाथ-पाणिं स विभूति-भूषितम् ॥
गभीर-मुद्रं समवेक्ष्य योगिनं ननाम साष्टाङ्ग-निपात-पूर्वकम् ॥३८॥

आकर उस युवाने. कुण्डलधारी. जटामण्डलसे मण्डित. कमण्डलुसे शोभमान करकमलवाले. सर्वाङ्गमें विभूतिसे भूषित. गम्भीर मुद्रावाले अवधूत तपस्वी योगीको देखकर साष्टाङ्ग प्रणिपातपूर्वक प्रणाम किया।

अमुं समुत्थाप्य स योगि-पुङ्गवो जगाद कस्त्वं कुत आगतः कथम् ? ॥
ततोऽञ्जलिं मूर्ध्नि निधाय सोऽब्रवीदुदन्तमात्मीयमभीप्सितं तथा ॥३९॥

तब उन योगिपुङ्गवने दयार्द्रभावसे उसको उठाकर कहा—तुम कौन हो ? कहाँसे आये ? कैसे आये ? तदनन्तर वह युवक शिरमें दोनों हाथोंको अञ्जलि बाँधकर अपना वृतान्त तथा अभीष्ट इस प्रकार कहने लगा—

वदन्ति नाम्ना भगवन् ! रमालयं विशः शिशुं दीनमवैतु मां भवान् ॥
न बन्धवः सन्ति विहाय मातरं शरण्य ! निर्विण्ण-मना वनाऽऽगतः ॥४०॥

भगवन् ! मुझे लोग रमला कहते हैं, आप मुझे दीन दुःखी वैश्यका बालक जानिये; एक माको छोड़कर मेरे कोई भाई बन्धु नहीं हैं। हे शरणागतवत्सल ! मनमें वैराग्य लेकर वनमें आपके शरण में आया हूँ।

अहो ! नु दैवेन भवाऽब्धि-नाविको मयोपलब्धोऽद्य भवानतर्कितः ॥
दयस्व शिष्योऽहमसानि शाधि मां न साधवो दीन-जनेषु निष्ठुराः ॥४१॥

अहो ! दैवयोगसे संसारसागरके नाविक आपको आज अकस्मात् मैने पा लिया, दया कीजिये, मैं आपका शिष्य हूँ। मुझे शान्तिका उपदेश दीजिये, कृपा कीजिये; क्योंकि विशेष कर साधु महात्मा दीन-जनों पर निष्ठुर नहीं होते।

इति ब्रुवाणं पतितं पदान्तिके प्रगल्भ-गम्भीर-गिरा जगाद तम् ॥
प्रसन्न-चित्तः प्रशमैक-साधनो निवर्तयन्नेष कषायिताशयम् ॥४२॥

ऐसा कहते हुए चरणोंमें पड़े हुए कषायित आशयवाले रमलाको प्रसन्नचित्तवाले और प्रशम रूप अद्वितीय साधनवाले सिद्ध शान्तिनाथ योगी. प्रगल्भ गम्भीर वाणीसे उसे उस व्यवसायसे व्यावृत्त करते हुए इस प्रकार कहने लगे—

अवाप्यते त्यागवताऽमृतं पदं तथाऽपि साधो ! जननीं निराश्रयाम् ॥
विहाय मोक्षं क्षमसे न वीक्षितुं बलाऽबलं वीक्ष्य विधीयते क्रिया ॥४३॥

अरे साधु ! त्यागसे अमृतपद प्राप्त अवश्य होता है, इसमें संशय नहीं, तथापि निराश्रया माताको त्यागकर मोक्षपद देख नहीं सकते। क्योंकि बलाबल देखकर कोई भी कर्म किया जाता है। सारं ततो ग्राह्यमपास्य फल्गु।

निशम्य सामान्यतयाऽनुशासनं प्रवर्त्तते कर्म्मणि मन्द-धीर्जनः ॥
विविच्य कर्त्तव्य-विधौ विवेकिनः शनैः प्रविश्याऽऽशु शुभानि भुञ्जते ॥४४॥

मन्दमति मनुष्य. सामान्यतया 'यदहरेव विरज्येत तदहरेव प्रव्रजेत्' 'त्यागेनैकेऽमृतत्वमानशुः' इत्यादि विधिनिषेधमय शास्त्रवचन सुनकर विचार विवेक न कर 'महाजनो येन गतः स पन्थाः' कहते हुए किसी भी काममें लग जाते हैं। किन्तु विवेकी जन हिताहित विचार विवेक कर शनैः कर्तव्य विधिमें अग्रसर होते हैं और अविलम्ब शुभ फल भोगते हैं।

प्रबोधितस्तेन स इत्थमर्थतः कृतार्थतामात्मनि नावधारयन् ॥
वितर्कयामास विकल्प-कल्पनैर्निमज्जता किन्न किलाऽवलम्ब्यते ? ॥४५॥

इस प्रकार उन सिद्धने उस रमलाको तत्त्वार्थसे प्रबोधित किया, किन्तु अपनेमें कृतार्थता न देखकर. नाना विकल्पोंकी कल्पना करता हुआ इस प्रकार तर्क वितर्क करने लगा। बात भी ठीक है—डूबते को तिनकेका भी सहारा होता है। श्मशान-वैरागी रमला कहने लगा—

शुकेन मुक्तौ जनकौ मनीषिणा ध्रुवेण बाल्ये कपिलेन योगिना ॥
स-पूर्ण-गोपीन्दु-नृपेण वा कथं स्वमिष्टमाप्तं न मयाप्यते ? प्रभो ! ॥४६॥

हे प्रभु ! शुकदेवने बाल्यावस्थामें ही माता पिता को त्याग दिया था तथा योगी कपिल मुनि ने भी बालककालमें ही माता को त्याग दिया था; बालसाधक ध्रुवने भी माता पिताको त्याग दिया था; एवं पूर्ण-मल्ल-गोपीचन्द्र-भर्तृहरि प्रभृति त्यागी योगियोंने वह अमृतपद पाया. मैं क्यों नहीं पाऊँगा ?

विहस्य तं प्राह स वाग्विशारदो विशेष-सामान्य-विचार-पेशलः ॥
अनात्म-विज्ञस्य फलाऽभिलाषिणः परानुकारो हि विचार-शून्यता ॥४७॥

तब वे वाग्विशारद सिद्ध शान्तिनाथयोगी सामान्य और विशेष वस्तु के विचारविवेकमें कुशल होनेके कारण रमलाके तर्कोंका उपहास करते हुए कहने लगे—अनात्मविज्ञ होते हुए मोक्षफलाभिलाषीका परानुकरण विचारशून्यता है। देखा-देखी साधे जोग, छीजे काया बढ़े रोग। अपनी ओर देख कर सब काम किया जाता है।

गृहादिक-त्याग-विधिश्च शैशवे न दूषितस्तीव्र-विराग-शालिनः ॥
अणीयसोऽप्यत्र मणेर्निजाकराद् वियोगिता योगकृते किरीटिनाम् ॥ ४८ ॥

तीव्र वैराग्यशाली योगीके लिए शैशवावस्थामें भी माता-पिता गृहादिका त्याग दूषित नहीं है। क्योंकि अणुभरका मणि भी निज खानिसे वियुक्त हो जाता है तो राजमुकुट देवमुकुट आदि से युक्त होता है। उच्च पद प्राप्त करता है।

अनेक-जन्मार्जित-योग-सिद्धयः शुकादयः क्षीण-मला हि योगिनः ॥
तथा प्रबुद्धाः पितरोऽपि ते स्वयं न ते वयं विद्म इदं तथा-विधम् ॥ ४९ ॥

अनेक जन्मोंसे उपार्जित योगसिद्धिवाले वे सनकादि शुकदेव, वामदेव, मार्कण्डेय, याज्ञवल्क्य, नन्दीश्वर, ध्रुव, प्रल्हाद, कपिल, पूर्ण, गोपीचन्द्र, भर्तृहरि, प्रभृति योगी लोग शुद्धाशय क्षीणमल प्रबुद्ध थे तथा उनके मातापिता भी प्रबुद्ध थे। किन्तु हम तुम्हारी दशा वैसी नहीं देख रहे हैं। उन महान् विभूतियोंका नकल कर तुम्हारा कल्याण नहीं है।

विधूय वृद्धां विधवामबोधिनीं धनेन हीनामसमीक्ष्य मातरम् ॥
त्वमागतः क्षीण-विरागवानहो ! महोदयो नाल्प-बलैरुपक्रमैः ॥ ५० ॥

निर्धन अबोध विधवा वृद्ध माताको छोड़कर विना विचारे तुम वनमें आगये और वैराग्य भी क्षीण है,तीव्र वैराग्य भी नहीं है अहो ! महोदय अल्पबलवाले उपक्रमोंसे नहीं होसकता। जैसा साधन वैसी सिद्धि।

विमुञ्चतः किञ्च तव स्व-मातरं भविष्यति प्रत्युत किल्विषं महत् ॥
अतो मया याहि समं निजालयं विमुञ्चतस्त्वां मम चास्त्यनौचिती ॥ ५१ ॥

किञ्च माताको त्यागते हुए तुमको प्रत्युत महापाप लगेगा, और तुम्हारे घर तक न पहुँचाकर ऐसे ही भटकते हुए तुमको छोड़ देते हुए मुझेभी पाप लगेगा, यह अनुचित है। चलो, मेरे साथ अपने घर को।

स एवमादाय तमुत्कमोत्सुकं तदालयं गाधिपुरान्तिकं ययौ ॥
तपोधनो गाधिसुतेन सम्मितो न विक्रमो योगि-जनेन सह्यते ॥ ५२ ॥

ऐसा कह कर वे तपोधन गाधिपुत्र विश्वामित्रके समान सिद्ध शान्तिनाथ योगी उत्क्रमण करनेमें उत्सुक उस रमलाको लेकर उसके घर गाधिपुर (गाजियाबाद) को गये। क्योंकि विपरीत व्यवहार योगियोंसे सह्य नहीं हो सकता। योगी लोग अन्याय देख नहीं सकते।

गृहाण मा मुञ्च तवायमात्मजः स इत्थमाभाष्य तदीय-मातरम् ॥
स्वयं तपस्यार्थमगात् पुनर्वनं न साधवः प्रत्युपकार-काङ्क्षिणः ॥ ५३ ॥

लो. ये तुम्हारा लड़का रमला ला दिया है, अब मत छोडना; ऐसा कहकर उसकी माताको सौंप कर सिद्ध शान्तिनाथ योगी स्वयं तुरत तपस्याके लिए पुनः वनको चल दिये। क्योंकि साधुलोग प्रत्युपकारकी आकांक्षा नहीं रखते।

सुतं समासाद्य गतागतं प्रसूः प्रसन्न-चित्ता प्रशशंस योगिनम् ॥
महात्मनाऽनेन मदीय-जीवितं निवर्तितं हन्त ! दया-पयोधिना ॥ ५४ ॥

घर से निकल कर फिरसे घरमें आये पुत्रको पाकर रमलाकी माता अतिप्रसन्न हुई और योगीकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगी कि-अहो !

धन्य. इस महात्माने मेरा जीवन लौटा दिया, मैं फिरसे सञ्जीवित हो गई।

निशम्य वृत्तं प्रतिवेशिनो जना नितान्त हृष्टाः सहसोपतस्थिरे ॥
भवन्ति सम्पत्सु हिताय देहिनो न चापदि प्रीतिरिति श्रुता स्थितिः ॥ ५५ ॥

इति पूर्वचरितम्

इस समाचारको सुनकर अड़ोस-पड़ोसके सब लोग इकट्ठे हो गये और घर छोड़कर भागे हुए रमलाको लाकर योगी फिरसे वनको चले गये, यह जानकर सब लोग विस्मित तथा हर्षित हुए। ठीक है। संपत्तिमें सब हितैषी होते हैं, किन्तु आपत्तिमे कोई किसीसे प्रीति नहीं रखता।

इदं भवे शान्तिचरित्रमानखं गभीर-रोचिष्णु-पदावली-सखम् ॥
कवीश्वराणां जनयत् सुधा-सुखं शिवाय भूयान्नरहरि-वाङ्मुखम् ॥५६॥

यह शान्तिनाथचरित्र आनखशिख गम्भीर रुचिर पदावली सखा नरहरिनाथका वाङ्मुख, भव (शिव तथा लोक) में रससिद्ध कवीश्वरों को और समग्र रसिक भावुक लोगोंको सुधामाधुरीका सुख देता हुआ शिवप्रीतिके लिए तथा सबकी भलाईके लिए हो। इति पूर्व चरित्र।

अथोत्तर-चरितम्

तमेकमात्मानमथैकनिश्चयो विवेक्तुमेकान्त-कृतैक-संश्रयः ॥
स नैकधा खानि विधाय चैकधा समाधिमेकं समधादनेकशः ॥ ५७ ॥

अथ च उस एकमेवाद्वितीय आत्माका विवेक करनेके लिये, एकनिष्ठ नश्चय कर, एकान्त नितान्त प्रशान्त तपोवनमें. वे श्री शान्ति नाथ योगी. आश्रय करके. ज्ञानकर्मभेदेन अनेक विषयोंमें. व्यस्त इन्द्रियों का प्रत्याहार कर. प्रत्यङ्मुखत्वसे चित्तवृत्ति-निरोध द्वारा. एकत्र कर. त्रिपुटीविलयपूर्वक एकात्म निर्वितर्क समाधि कस कर बैठनेसे प्रथम पुरोवर्तिनी अनेक क्रियायें करने लगे—

द्विधा विभक्तस्य शिवाशिवात्मना द्वयाद्वयद्वेष-विनाशिनो वशी ॥
पद-द्वयं द्वारमसेवताऽनिशं निरेनसां द्वैतमपासितुं श्रयम् ॥ ५८ ॥

उक्त प्रकारेण वशीकृतचित्त श्रीशान्तिनाथयोगीने, निष्कलमष योगध्यानधौताशय योगी लोगोंके एकमात्र आश्रयभूत मोक्षद्वार, द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत, प्रभृति मतान्तरोंका विनाश करनेवाले, चन्द्रचन्द्रिकान्यायेन शिव-शक्तिके रूपसे द्विधा विभक्त होते हुए भी निरन्तर अभिन्नात्मा शिवके पादपद्मद्वयकी सेवा द्वैतका निराकरण करनेके लिए की।

त्रिसन्ध्यमाप्लाव-विधिस्त्रिपुण्ड्रकं गुणत्रय-ज्यानि-कृते त्रिसत्यता ॥
जगत्त्रयं जेतुमथो तनु-त्रयं त्रयीविदस्तस्य कृतिस्त्रिधाऽभवत् ॥ ५९ ॥

प्रातर्मध्यान्ह सायं त्रिसन्ध्या स्नानादि यौगिक विधि, भस्मत्रिपुण्ड्र धारण, सत्त्व, रजस्तमः तीनों गुणोंका लय करनेके लिए मनसा वाचा कायेन त्रिसत्यता, स्वर्ग मर्त्य पाताल तीनों लोकोंको तथा स्थूल सूक्ष्म कारण तीनों शरीरोंको जितने के लिए उन त्रयीविद् (ऋक् यजुः साम वेदज्ञ) की क्रिया तीन प्रकार की हुई।

चतुर्विधः प्राणि-गणो यतोऽगमद् यतश्चतुर्वेद-विनिर्गमोऽगमात् ।
स तं चतुर्वर्ग-निदानमास्थितो निराकरोदेष चतुर्थमाश्रमम् ॥ ६० ॥

अण्डज, जेरज, उद्भिज्ज, स्वदेज ४ चतुर्विध प्राणीगिण जिससे उत्पन्न हुआ, और जिस अगम्य तत्त्वसे अथर्वसहित चारों वेद प्रगट हुए, उस चतुर्वर्गके आदिकारण (धर्म अर्थ काम मोक्षमय पुरुषार्थचतुष्टय के मूल) नाथ ब्रह्म तत्त्वमें आस्था रख कर तपोधन शान्तिनाथजीने चतुर्थ आश्रमका भी निराकरण किया। अतिवर्णाश्रमी अवधूत हुए।

स पञ्चित-क्लेशमशेषमुल्बणं विजित्य पञ्चेन्द्रिय-वृत्तिमात्मवान् ॥
वपुश्च पञ्चात्म नियन्तुमुच्चकैर्विमृश्य पञ्चाग्नि-तपस्युपाविशत् ॥६१॥

अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश-स्वरूप उल्बण पञ्च क्लेशोंका जितकर पञ्च कर्मेन्द्रिय पञ्च ज्ञानेन्द्रियोंकी क्लिष्ट वृत्तियों को भी जीत कर पाञ्चभौतिक शरीरको नियन्त्रित करनेके लिए आत्मवान् महात्मा उन श्रीशान्तिनाथजीने पञ्चाग्नि तपस्यामें विमर्शपूर्वक प्रवेश किया। पञ्चपञ्चात्मक समस्त तत्त्वोंका विजय करनेके लिए पञ्चाग्नितप में बैठे।

यथाक्रमं दिक्षु चतुर्भिरुच्छिखैः स पञ्चमेनांशुमतोपरि स्वयम् ॥
समाधि-धीरः शिखिभिः स्फुलिङ्गिभिः प्रतप्यमानोऽत्यधिकं विदिद्युते ॥६२॥

यथाक्रम चारों दिशाओंमें चार धूनियोंकी जाज्वल्यमान स्फुलिङ्गी अग्निकी उच्च ज्वालावोंसे तथा उपरसे पञ्चम अंशुमान् सूर्यके प्रखर किरणोंसे प्रतप्यमान होते हुए भी समाधिमें धीर बद्ध सिद्धासन सिद्ध शान्तिनाथ योगी मध्यमें और भी अधिक देदीप्यमान हुए।

प्रतप्य पञ्चाग्निभिरित्थमुल्बणैः स संयमी ग्रीष्ममतीत्य भीषणम् ॥
ततो प वर्षासु दिगम्बरोऽम्बरे निरन्तरे वारिधरे स्थली-स्थितः ॥६३॥

वे संयमी इस प्रकार उग्र पञ्चाग्नि तपस्या द्वारा भीषण ग्रीष्म ऋतुको बीताकर वर्षा ऋतुमें निरन्तर वारिधारा वर्षाते हुए वारिधर में दिगम्बर होकर कौपीनमात्र धारण करते हुए अनावरण अम्बरमें तपोवनस्थलीपर खड़े होकर पर्जन्यतपस्या करने लगे।

प्रविश्य हेमन्त-ऋतौ जलाशये निजाशयं शोधयितुं समुद्यतः ॥
स शान्तिनाथः प्रमथेश-रूपिणो जजाप गोरक्ष-गुरोर्मनुं मुनिः ॥६४॥

हेमन्त ऋतुमें जलाशयमें प्रवेश कर निजाशयका शोधन करने के लिए उद्योग करनेवाले वे मुनि शान्तिनाथजी प्रमथगणोंके ईश्वर क्षिवगोरक्षनाथके मनुका (ॐ शिवगोरक्ष ! इस महामन्त्र का) जप करने लगे।

इति क्रमेणाऽस्य तपस्यतः सतः समा ययुर्द्वादश वासरोपमाः ॥
पस्म्पय पान-परस्य योगिनो जितात्मनः क्षीण-तनोर्मनस्विनः ॥६५॥

इस क्रमसे तपस्या करते हुए उनके १२ वर्ष तो १२ दिनके समान चले गये। इस द्वादशवार्षिक तपोव्रतकी अवधिमें आपने केवल पयोव्रत धारण किया था (दूध और पानी मात्र पीते थे। कभी दूध नहीं मिला तो पानी पीकर रह गये।) क्योंकि जितात्मा जितेन्द्रिय योगी थे, मनस्वी कार्यार्थी थे। तन क्षीण था मुखमें तेज था।

अतीत्य पञ्चाग्नि-तपस्ततः वरं प्रशान्त-गम्भीर-विशुद्ध-मानसः ॥
समाहरन् भानुरिव क्रिया-क्रमं क्रमादयासीत् स दिगन्तरं यतिः ॥६६॥

एवं प्रकार उस पञ्चाग्नि तपको पूरा कर उसके अनन्तर प्रशान्त गम्भीर और विशुद्ध मानस सरोवर सदृश मनवाले तपस्वी यति शान्तिनाथजी सायंकालिक सूर्यके समान अपने क्रियाक्रमका क्रमशः उपसंहार करते हुए अन्य दिशामें चले गये। सूर्य भी जगत्के दैनिक क्रियाक्रमका उपसंहार कर पूर्वसे पश्चिम दिशाको जाते हैं। वह चिरस्मरणीय रमणीय तपःस्थली साहपुर बमेटा थी, जो गाधिपुर के समीप है।

चिरेण पर्यट्य वनेषु केषुचित् स शौरसेनेषु पुनस्तपःकृते ॥
पयोलय-ग्राम-तटे निराकुलं मृगाकुलं प्राप वनं तपोधनः ॥६७॥

तथा चिरकाल पर्यन्त शौरसेन (मथुरा वृन्दावन व्रजके) कतिपय वनोंमें पर्यटन करते हुए वे तपोधन सिद्ध शान्तिनाथ योगी पुनश्च तदपेक्षया उत्कट तपत्या करनेके लिए गुरुग्रामके पयालागांवके परिसरपर विघ्नबाधाओंसे निराकुल किन्तु प्रशान्त मृगोंसे आकुल तपोवनमें पहुँचे।

स योगिनामग्रसरस्तरोस्तले निधाय पद्मासन-मुद्रया वपुः ॥
पुनस्तपस्तप्तुमियेष दुष्करं हठेन गाधेय इवोग्र-दीधितः ॥६८॥

पहुँच कर वे योगियोंके अग्रेसर शान्तिनाथजी एक घनच्छाय सुन्दर वृक्षके तले पद्मासन बाँधकर ध्यानमग्न हो गये और पुनः दुष्कर तप करने की इच्छासे हठयोगनिष्ठ गाधेय (विश्वामित्र) समान उग्र तेजवाले प्रतीत होने लगे।

षडासनस्थोऽथ समाः समाधिना निनाय योगी शरदः षडुत्थितः ॥
स ऊर्ध्व-बाहुः प्रतिसूर्यमेकपान्निमेष-वर्जं ज्वलदग्नि-सन्निभः ॥६९॥

अथ च जाज्वल्यमान अग्निके समान तेजःपुञ्ज उन योगी शान्तिनाथजी ने छे वर्ष आसनपर बैठ कर तप किया और सूर्यके सम्मुख पूर्वाभिमुख एक पांवसे खड़े दोनों हाथ उपरको उठाये निर्निमेष दृष्टिसे सौर त्राटक मुद्रा करते हुए और छे वर्ष पर्यन्त कठोर तपस्या कर १२ वर्ष पूर्ण किये।

पयोलयारण्य-सदां दिवानिशं कुलं मृगाणामनिमेष-दृष्टिभिः ॥
ददर्श तं शान्त-धियाऽकुतोभयं गृहीत-शष्पाऽङ्कुर-चारु-वक्त्रणाम् ॥७०॥

मुखमें तृणाङ्कुरोंको दबाये हुए सुन्दर अनिमेष दृष्टिसे प्रशान्त तेजोमय तपस्वी श्रीशान्तिनाथ योगीको अकुतोभय होकर पयालाके वनमें विचरनेवाले मृगोंके कुलने शान्त होकर अहोरात्र देखा।

कृताऽऽश्रमे तत्र तपस्विनाऽमुना ववर्ष कालेषु घनोऽभिवृद्धये ॥
निरामया वीतभयाः परधयः प्रजाः प्रजाताः परितुष्ट-चेतसः ॥७१॥

पयालाके वनमें आश्रम बनाकर तपस्या करते हुए तपस्वी श्रीशान्तिनाथजीके योगप्रभावसे सस्यादि सर्वौषधि - वृद्धिके लिए समय-समय पर मेघ वर्षा करने लगे। रोगरहित निर्भय धनधान्यसमृद्ध होकर जनता सन्तुष्टचित्तवाली हुई।

अहो ! नु दैवेन परीक्षितुं नु किं ? तपस्विनस्तस्य तपोबलं बलात् ॥
विशः शिशुः ख्यातिमुपागतो मृतो विशिष्य विश्वम्भर-नामधेयतः ॥७२॥

अहो ! ऐसी अवस्थामें दैवयोगसे उन तपस्वीके तपोबलकी मानो परीक्षा करनेके लिए विश्वम्भरके नामसे प्रख्यात वैश्यका लड़का बिना रोग बलात् अकस्मात् मर गया।

अतर्कितं वीक्ष्य पिता प्रसूः स्वसा तदद्भुतं शोकमवाप बन्धुता ।।
चिरं विलप्याथ शरण्यमागताः शिशुं तमादाय तमेव योगिनम् ।।७३॥

विश्वम्भरका अतर्कित मृत्यु देखकर मातापिता बन्धुवर्ग अतिशय शोकसे सन्तप्त हुए और चिरकाल पर्यन्त करुण विलाप कर उस मृतकको लेकर शरणागतवत्सल उन्हीं सिद्ध शान्तिनाथ योगीके शरणमें आये।

पुरोऽस्य निक्षिप्य तमात्मजं भृशं प्रहत्य वक्षःस्थलमात्म-पाणिना ॥
उवाच विक्रुश्य विरागवद् वचः शुचोपतप्तेन किमत्र नोच्यते ? ॥७४॥

आकर उस मृत बालकको महात्माके आगे रख दिया और हाथसे छाती पीट-पीट कर रोते हुए चींखकर वैश्यने विरक्तियुक्त वचन इस प्रकार बोला। शोकसन्तप्त क्या नहीं कहता ?

निधाय गोरक्ष-पदे दृढ-व्रतं मुनेऽत्र गोरक्षण-सक्षणे त्वयि ॥
न जातु जातः समय-व्यतिक्रमो मयि स्थिते संस्थितिरात्मजस्य किम् ? ॥७५॥

हे मुनि ! शिवगोरक्षनाथके पदपद्मोंमें दृढ़व्रत धारण कर गौवोंकी रक्षा करनेमें तुम जबसे तत्पर हुए तबसे आजतक कभी किसी प्रकार का अनर्थ नहीं हुआ था। असमयमें कोई काम नहीं हुआ था। आज मेरे जीते जी मेरा लड़का क्यों मरा ?

अनन्य-पुत्रस्य विगीत-जन्मनो मनोरथाऽतीत-पथस्य पापिनः ॥
स-शोकया शोकवतः स्त्रिया मम निवाप-हीनस्य वृथैव जीवितम् । ७६॥

मेरा दूसरा पुत्र भी नहीं है, मेरा जन्म निन्दित हो गया, मेरा मनोरथ अन्यथा हो गया, मैं पापी हूँ, शोकाकुल भार्याके साथ शोकयुक्त मेरा जीवन वृथा है, मरने पर भी पिण्ड पानी देनेवाला कोई नहीं रहा, हाय !

सुतं स्वहस्तेन समर्प्य वन्हये कथं प्रवेक्ष्यामि विदीप-मन्दिरम् ॥
अवश्यमग्नौ प्रविशामि भार्यया समं विरक्तस्य तदेष निश्चयः ॥७७॥

पुत्रको अपने ही हाथोंसे जलती हुई चितामें समर्पित कर पुत्रदीपक-हीन अन्धकारमय घरमें कैसे प्रवेश करूँगा ? भार्यासहित अवश्य अग्नि में प्रवेश करता हूँ। विरक्त हो चुका हूँ यही निश्चय है।

इति प्रसहयात्म-सुवो वियोगतो निशम्य वैश्याऽध्यवसायमात्मवान् ॥
स शान्तिनाथो घन-शान्त-निःस्वनः शनैः समाश्वास्य तमित्थमूचिवान् ।७८।

इस प्रकार पुत्रवियोगके मारे वैश्यके अध्यवसायको सुनकर आत्मवान् शोकमोहरहित शान्तिप्रिय श्रीशान्तिनाथयोगी उसको धीरेसे आश्वासन देते हुए मेघकी गम्भीर गर्जनासमान वाणीसे इस प्रकार बोले—

अलं शुचा वैश्य-कुलाऽवतंस ! ते स तेन यातः स्वकृतेन कर्मणा ॥
मनागतिक्रम्य न यान्ति जन्तवस्तवात्मजस्यात्र कथैव का पुनः ? ॥७९॥

पुनः पुनः प्राणि-गणैरुपात्तया तया निबद्धा क्रियया जगत्त्रयी ॥
त्रयी-विदस्तन्त्र-विदः पुराविदो विदुर्विधानं निधनं तथाऽऽयतिम् ॥८०॥

यतिं गृहस्थं स्थविरं व्रत-स्थितं स्थितं शिशुत्वे प्रबलं सुदुर्बलम् ॥
बलेन कालः कलयत्यसंयतं यत-व्रतास्तेन मनीषिणो भवे । ॥८१॥
भवेदवश्यं शुभमत्र वाऽशुभं शुभंयुना यत्त्वशुभंयुना कृतम् ॥
कृतात्मना तेन विशेष-वेदिना दिनानि नेयानि शुभ-क्रिया-क्रमैः ॥८२॥
क्रमैक-निष्ठस्य भवन्ति नापदः पदं च तेनोच्च-पदे निधीयते ॥
यतेत विद्वानवलम्ब्य पौरुषं रुषं विहायाऽमृतमश्नुते ध्रुवम् ॥८३॥
ध्रुवं ध्रुव-स्थान-गतं जनो जगौ जगाम कायाधव उच्चकैःस्थितिम् ॥
स्थितः पदे भर्तृ हरिर्नृपोऽमृते मृता न पूर्णः सह बङ्ग-भू-भृता ॥८४॥
भृता नवाऽमूर्निधयोऽष्ट सिद्धयो धियान्धवैस्तैर्नरवीरयोगिभः ॥
गभीरमुत्तीर्य भवाम्बुधिं गता गतार्थतां योगि-जना निरामयाः ॥८५॥
मयाऽपि बद्धात्र विशुद्ध-भावना वनानि तीर्थानि भृशं विगाहता ॥
हताऽखिला वृत्तिरथेन्द्रियोत्थिता स्थितेन गोरक्ष-पदाऽम्बु-जन्मनोः ॥८६॥
मनो मनोज्ञानि निरीक्ष्य जन्मिनामिनांशु-पातादिव भानि बोधतः ॥
धृतानि वस्तूनि चलत्यनारतं रतं तदुत्थेषु सुखेषु चञ्चलम् ॥८७॥
चलन्ति तेनाऽखिल-खानि तैः क्रियाः क्रियन्त आभिस्त्रिविधः प्रसूयते ॥
यतेर्न लोके परिणाम ईदृशो दृशोरदृश्योऽपि परत्र यस्मरः ॥८८॥
स्मराऽनुबन्धीनि घनाऽनुबन्धिनो धिनोति खानि प्रकटाऽनुषङ्गतः ॥
गतं वृषं कृष्यत एव रोषतः सतोऽपि चेतोऽन्य-हृदः कथैव का ? ॥८९॥
बकाः शुकाः केकि-पिका द्विकाः करी किरी हरिर्वा हरिणा हरिर्हरिः ॥
हरिः क्षपाः पादप-वल्लिकाऽवली विलीय भुङ्क्ते मुहुरात्म-कृत्य-जम् ॥९०॥
त्यजन्ति नो हन्त ! तथाऽपि तां कृतिं कृती तु विज्ञाय जहाति दुष्कृतिम् ॥
कृतोपदेशः किल देशिकोत्तमैस्तमेकमात्मानमवैति योगतः ॥९१॥
गतस्तवाऽऽत्मानुमतां सुतो गतिं गते न शोकं विबुधा विनन्वते ॥
वतेदृशं तेऽनुचितं चिताऽनले न लेभिरे के शरणं शरीरिणः ? ॥९२॥

हे वैश्यकुलावतंस ! शोक मत करो, यह विश्वम्भर अपने किये कर्म से मृत्युको प्राप्त हुआ है, प्राणिमात्रको अपने किये कर्मका फल भोगना ही पड़ता है; तुम्हारे पुत्रकी कथा क्या है ? प्राणिगणोंसे पुनः-पुनः उपात्त क्रियासे जगद् बद्ध है। विधान निधन तथा भावी आयतिको

पुराविद् तन्त्रविद् तथा वेदत्रयीविद् विद्वान् लोग ही जानते हैं। चाहे यति हो, गृहस्थ हो, वृद्ध स्थविर हो, ब्रह्मचर्यादि व्रतस्थित हो, शिशुत्व में स्थित हो, चाहे तो प्रबल हो या दुर्बल हो, किन्तु असंयत सभीको काल बली बलपूर्वक कवलित कर लेता है। इसी लिये मनीषी यतीलोग योगमार्गमें प्रवृत्त होते हैं। अच्छे या बुरे मनुष्यसे किये गए शुभाशुभ कर्मोंका फल अवश्यमेव भोगना पड़ता है। अत एव विचारशील विद्वान् को शुभ क्रियाक्रमोंसे ही दिन बिताना चाहिए। क्रमैकनिष्ठ पुरुषको आपत्तियाँ नहीं पड़तीं और उच्च पदमें पदाधान करता है। अतः विवेकी का कर्तव्य है कि वह शोक क्रोधादिका परित्याग कर पुरुषार्थका अवलम्बन करे। उसीसे वह ध्रुवसत्य अमृतपदको प्राप्त करता है। ध्रुव प्रल्हाद गोपीचन्द्र भर्तृहरि पूर्ण आदि अजरामर उच्च पदमें स्थित हैं तो पुरुषार्थसे ही हैं। एवं अन्यान्य बुद्धियुक्त पुरुषार्थी नर नारियोंने तथा योगिजनोंने अष्ट सिद्धि नव निधियोंको पाया है और निरामय होकर गम्भीर संसार सागरको तरकर पार गये हैं। अत एव मैने भी इसी कर्मयोगमय पौरुषमें विशुद्ध भावना से श्रद्धा बाँध ली है, अनेक तपोवन और तीर्थोंका पर्यटन स्नान तपश्चर्या की। समग्र इन्द्रियोंकी वृत्तिका निरोध किया एवं शिव गोरक्षके चरणकमलोंमें तल्लीन होकर रहता हूँ। जीवोंका मन मनोज्ञ वस्तुवोंको देखकर उनमें प्रवृत्त होता है और सूर्यके किरणोंके पड़ते ही जैसे तारा ग्रह नक्षत्र लुप्त हो जाते हैं, उसी प्रकार काल बलीके आगे सब लीन हो जाते हैं। एवं च आत्मबोध हो जाने पर नामरूपात्मक जगत् लुप्त हो जाता है। विषय गोचरोंमें प्रवृत्त चञ्चलमन वैषयिक क्षणिक सुखोंमें भूल जाता है। मनके द्वारा प्रवर्तित अखिल इन्द्रियाँ स्वस्व—विषयमें चलती हैं। उनके द्वारा विभिन्न प्रकारकी क्रियायें की जाती हैं। उन क्रियाओंसे त्रिविध (शुक्ल कृष्ण तथा मिश्रित) फल औरोंके लिए फलता है, किन्तु योगाग्निसे कर्मफलका निर्मूल करने वाले योगीके लिये कुछ नहीं (कर्माशुक्लाकृष्णं योगिनस्त्रिविधमितरेषाम्। निस्त्रैगुण्ये पथि विचरतां को विधिः को निषेधः ?) लोकमें कर्मोंका फल इस प्रकारका होता है। प्रत्यक्ष चर्म चक्षुसे नहीं दिखता, परन्तु

परत्र सन्तापकारी होता है। पुत्र दारा धनादिके मोहमें मग्न लोगोंके स्मरानुबन्धी इन्द्रियोंका अनुषङ्ग कर मन उनका तर्पण करता है और एक बार धर्ममें या निवृत्तिमार्गमें लगा हुआ भी पुनः आकृष्ट होकर उन्हींमें जकड़ा जाता है। सत्पुरुषोंका चित्त भी रोषसे दुर्निग्रह होता है, औरोंके चित्तकी तो बात ही क्या ? चित्तके ही कारण बारंबार ८४ लाख योनियोंमें नाना यातनायें भोगनी पड़ती हैं-कभी काक, बक, शुक केकी, कोकिल, करी, केसरी, मर्कट, सूकर, भेक, हय, हरिण, सर्प, तृण, गुल्म, तरु, लता, आदि स्थावर जङ्गम जड़ चेतन जीव जन्तु बनकर अपना कर्मफल भोगना पड़ता है। किन्तु हन्त ! दुःखकी बात है कि फिर भी उस बन्धनकारक कृत्यको त्याग नहीं सकते। धन्य साधुजन, कर्मकौशलपूर्वक तत्त्वको जानकर दुष्कृतको त्याग देते हैं और देशिकोत्तम द्वारा भोगोपदेश प्राप्त कर उस एकमेवाद्वितीय आत्माको जान लेते हैं, जिससे आदेशका अनुपम उपदेश स्वरूप शिवसामरस्यका लाभ करते हैं। तुम्हारा लड़का भी अपनी कर्मगतिको प्राप्त हुआ है, विवेक विचारशील विबुधलोग गतका शोक नहीं करते; तुमभी मत करो। हन्त ! ऐसा दुराग्रह अनुचित है। एक दिन चिताकी अग्निमें शरण किस शरीरधारीने नहीं लिया और कौन नहीं लेगा ? इस लिए दुरध्यवसाय छोड़ दो।

इतीदृशैः कोमल-पेशलैरपि प्रबोध्यमानः श्रुति-सम्मितैर्मितैः ॥
वचोभिरूरव्य उवाच मुग्धवद् धुने विवेके प्रतिबोधनं वृथा ॥९३॥

इतना इस प्रकारके कोमल तथा पेशल श्रुति स्मृति शास्त्र सम्मित वचनोंसे प्रबोध्यमान भी वह वैश्य मुग्धवत् फिरसे दुराग्रह करने लगा। क्योंकि विवेक जब मनुष्यका साथ छोड़ देता है तो आदेश उपदेश प्रतिबोधन सब वृथा होजाते हैं।

अहो ! हतोऽहं सुर-शाखि-वेदिकामुपागतः काम-दुघामथाऽपि गाम् ॥
विचिन्त्य चिन्तामणिरप्यभागिनं पराङ्मुखः किं करवाणि साम्प्रतम् ? ॥९४॥

ओहो ! मैं हतभागा हूँ। कल्पवृक्षकी वेदिकामें आकर भी और कामधेनु गौके शरणमें आकर भी निराश होरहा हूँ। अभागी समझ कर चिन्तामणि भी विमुख होगया। अब क्या करूँ ?

अथाऽङ्कमानीय सुतं स्वयं विशं विशन्तमग्नावरोध्य सिद्धराट् ॥
कृपालुरादाय जलं कमण्डलोः करेऽक्षिपद् बालमुखेऽमृतोपमम् । ९५॥

ऐसा कह कर मरे हुए लड़केको गोदमें लेकर आकुल व्याकुल वैश्य चितामें प्रवेश करने लगा तो उसे रोक कर कृपालु सिद्ध श्रीशान्तिनाथ योगीने अपने कमण्डलुका अमृत तुल्य जल हाथमें लेकर उस बालक के मुखमें अभिषिक्त कर दिया।

स तेन सुप्तोत्थितवत् स-विस्मयं समीक्षितोऽन्यैः सहसोत्थितः शिशुः ॥
जनन्युपानीय तमङ्कमात्मजं शिरः समाघ्राय पितुः करे ददौ ॥९६।

योगशक्तियुक्त जलका छिड़काव पड़ते ही विश्वम्भर सोकर उठासा सहसा उठ बैठा। लोग देख कर विस्मित हुए। माताने पुत्रको गोदमें ले लिया वात्सल्य भावसे शिर सूँघ कर पिताके हाथमें दे दिया।

पिता पदाम्भोज-युगे स योगिनो निधाय पुत्रं प्रणनाम भूशयः ॥
प्रणेमुरानम्र-शिरोभिरञ्जलिं विधाय मूर्ध्नि स्तिमितास्तथा परे ॥९७॥

पिताने पुत्रको लेकर पुनर्जन्मदाता सिद्ध शान्तिनाथ योगीके चरण कमलोंमें रख दिया और साष्टाङ्ग प्रणाम किया। तथा सब लगोंने अञ्जलि बाँध कर नम्र शिरसे सिद्धको प्रणाम किया। इस अद्भुत घटनाको देख कर सब लोग स्तिमित रह गये।

ततः स उत्थाप्य विशं सुतान्वितं यतीश्वरः सर्व-जनैः समं च तम् ॥
विसर्जयामास गृहाय हर्षितं भवन्त्यनारुह्य न संशयं श्रियः ॥९८॥

उसके अनन्तर यतीश्वरने पुत्र सहित वैश्यको उठा कर सर्व ग्राम-जनताके साथ विसर्जित किया तो हर्षित होकर सब लोग घर को चले। अग्नि—प्रवेशका दृढ़ निश्चय न होता तो यह हर्षका अवसर न आता। अतः कहते हैं कि प्राणोंकी बाजी लगाये बिना श्री संपदा नहीं मिलती।

ततो निवृत्ताः पथि ते मिथः कथां प्रथीयसीं तां शिव-योगिनोऽस्तुवन् ॥
जनैः समन्तादभिनन्दिता गृहान् प्रविश्य माङ्गल्य-विधिं व्यधुर्मुदा ॥९९॥

वे लोग चलते हुए मार्गमें हर्षोल्लासमय विविध प्रकारसे सिद्ध योगीकी कथा कहने सुनने लगे। परस्पर कोई किसी घटनाको सुनाता था तो कोई किसी घटनाको। शिवयोगीकी स्तुति करते हुए चारोंओरसे ग्रामस्थ जनोंसे अभिनन्दित होते हुए गृहमें मङ्गलाचार कर प्रवेश किया और परम आमोद प्राप्त किया।

अथाऽस्य वैश्यस्य समस्त-बन्धुभिः समं परैर्जानपदैस्तदाश्रमे ॥
जलाऽऽशयं खातुमभून्मनोरथो यतोऽन्तिके तेऽस्य ययुस्तपस्विनः ॥१००॥

तत्पश्चात् उस वैश्यके मनमें समस्त बान्धवोंके तथा साथ ही तज्जनपद-निवासी जनताके साथ सिद्ध शान्तिनाथयोगीके आश्रममें एक जलाशय खोदनेका मनोरथ हुआ। एक मत होकर योगीके आश्रममें गये।

प्रणम्य बद्धाञ्जलि-सम्पुटाः स्फुटं निवेदयामासुरभीप्सितं सते ॥
तदैव तेनानुमतेऽगुरन्तिकं नृपाऽधिकारस्य स एत ईक्षितुम् ॥१०१॥

चरणोंमें प्रणामकर बद्धाञ्जलिपुट होकर स्पष्टतया अपना मनोरथ निवेदित किया। मृग पक्षी गो भैंस मनुष्य सर्व जीवों के जीवन जलका पुण्यकर्म होनेसे सिद्धने तत्काल अनुमति दी और राजाधिकारीके पास बल्लभगढ़ गये। अधिकृत निरीक्षण करनेको आया।

समीक्ष्य गामत्र नियन्त्रिते नृपात् सरोवरं जातु न खातुमर्हथ ॥
इति ब्रुवाणः शिव-योगिनाऽमुना प्रबोधितोऽप्युद्धतवद् विनिर्गतः ॥१०२॥

आकर चारों ओर देखा और कहने लगा—सर्कारी जगङ्गलमें कोई भी कभी भी तालाव नहीं खोद सकता न तो और ही कुछ कर सकते हो। ऐसा कहते हुएको शिवयोगी श्रीशान्तिनाथ जीने प्रबोधित किया, किन्तु उद्धतसा कुछ न सुन कर निकल गया।

विनिर्गतस्यैव वनाद् वपुर्ज्वरोऽप्यहीद् दृढं तुङ्गतुरङ्गसादिनः ॥
व्रजैरजस्रं भिषजां चिकित्सितोऽप्यसाध्यतां व्याधिरधत्त धूर्त्तवत् ॥१०३॥

उस तपोवनसे निकला ही था कि ऊँचे घोड़े पर चढ़े हुए उसके शरीरमें भीषण ज्वर भी दृढ़तया चढ़ गया। अनेक डाक्टर वैद्योंने चिकित्सा की, किन्तु धूर्तवत् व्याधि और असाध्य होता गया।

स्वपन्निशि प्रेक्ष्य रुषा कषायितं स तर्ज्जयन्तं मुनिमेनमुत्थितः ॥
अविश्य कृच्छ्रेण वनं तदुन्मना मनागिवोल्लाघ-ननुर्ददर्श तम् ॥१०४॥

रातको सोते समय रोषसे कषायित से होकर तर्जना करते हुए मुनिको देख कर समझ गया और उन्मनस्क होकर उठते ही कष्टसे जैसे तैसे उसी पयालेके वनमें घूसा, घूसते ही कुछ स्वस्थ होकर आकर सिद्धके दर्शन किये।

स दर्शनेनैव विनीतरुङ् मुहुर्निपत्य साष्टाङ्गपुरस्सरं पदे ॥
उपायनीकृत्य धनं बहु स्तुवन् वनं समग्रं प्रदिशन् गृहानगात् ॥१०५॥

दर्शन करते ही (चरणोंमें प्रणाम करते ही) सर्वथा स्वस्थ हो गया और यह चमत्कार देख कर वारंवार साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम कर पौनःपुन्येन स्तुति करता हुआ बहुतसा रुपया भेट कर पयाले का सारा वन देकर चला गया।

ततः समुत्खाय सरो मनोहरं मराल-सारङ्ग-वाद्यु-पाश्रयम् ॥
वितेनिरे तेऽत्र मखं मुनेर्गिरा सदक्षिणं भूरि-विसृष्ट-भोजनम् ॥१०६॥

तदनन्तर मनोहर सरोवर खोद कर वहाँ पर मुनिकी वाणीसे महान् यज्ञ किया, भूरि २ भोजन तथा दान दक्षिणा देकर सबको सन्तुष्ट किया। जलाशयमें जलचर पक्षी मत्स्यकच्छपादि विहार करने लगे और गौ भैंस मृग मयूरादि पानी पीने लगे। जनताके लिए पुण्य तीर्थ बन गया।

पयोल-सारङ्ग-सिसाय-सागरे बमेट-भूपानि-मलेर-सावटे ॥
भनग्गदा-बल्लभ-दीर्घ-देवरी-बहाद्रु-डुँड्सा-हर-जाज्रु-सीकरे ॥१०७॥
तदाज्ञया तत्र जनैः पदे पदे विनिर्मिता गोमख-वेद-शालिकाः ॥
अहि-प्रपाऽऽराम-तडाग-मन्दिराण्यथाऽन्नसत्राण्यगदाऽऽलयास्तथा ॥१०८॥

एवं सिद्ध शान्तिनाथजीके आदेश उपदेशसे—पयाला, सारन, सिसाया, सागरपुर, बमेटा, भूपानी, मलेरना, सावटी, गदपुरी, भनक पुर, बल्लभगढ़, दीग, देवरी, बहादुरगढ़, डूँड़सा, हरपुरा, जाज्रु, सीकरी, प्रभृति, गुडगावांके गावोमें स्थानीय जनताने गोशाला,

यज्ञशाला, पाठशाला, प्याउ, कुवा, उद्यान, तडाग, मन्दिर, अन्नक्षेत्र, औषधालय तथा अन्यान्य नाना प्रकार जनहितकार्य किये।

गवां कृते म्लेच्छ-कुलं मनस्विनोऽनुयायिभिस्तस्य सशस्त्रमुल्बणम् ॥
अथैकदा स्वप्नपुरे पराजितं ससैनिकं सोपधि धीर-धार्मिकैः ॥१०९॥

उसके अनन्तर एक समय (संवत् १९८५सन् १९२९ में) जिला गुडगाँवा तहसील बल्लभगढ़ पयालेके पास, सोप्ता नामक ग्राममें सिद्ध शान्तिनाथयोगीके अनुयायी धीर वीर धार्मिक जनोंने, गोरक्षार्थ ससैनिक सोपधि म्लेच्छोंके दलका दलन किया।

महेश-गोरक्ष-मनोज्ञ-पादुका-स्फुरद्-बहिर्वेदि लता-द्रुमाऽऽवृतम् ॥
तपोवनं तस्य सतोऽकुतोभयं मृगैः पतत्रैः परिवारितं बभौ ॥११०॥

महेश्वर गोरक्षनाथकी मनोहर चरणपादुकासे सुशोभित बहिर्वेदिका-वाला, नाना वृक्ष लता पुष्पोंसे चारों ओर आवृत, सरोवरसे विराजमान, अकुतोभय हरिणादि मृग तथा मयूरादि पक्षियोंसे परिवारित, वह उन सिद्ध शान्तिनाथ योगीका प्रशान्त तपोवन शोभित हुआ।

क्वचिन्मृगीणां शिशुभिः परिप्लुतैः क्वचिन्मनोहारि-शिखण्ड-ताण्डवैः ॥
क्वचिच्च गोपाल-नियुद्ध-लीलया तदाश्रमोऽधत्त निसर्ग-रम्यताम् ॥१११॥

कहीं मृगीशिशु चौकड़ी मार कर खेलते हैं तो कहीं मनोहर बर्हव्यूह फैलाकर मोर केका करते हुए नाच रहे हैं और कहीं पर अखाड़ोंमें गोपालबालक लीलया बाहुयुद्धका अभ्यास कर रहे हैं। इस प्रकार वह आश्रम निसर्ग-रमणीय हुआ है भी।

समन्ततो ग्राम-जना वृषोत्सुका अवर्धयंस्तं प्रतिवर्षमध्वरैः ॥
क्रियावसाने सुखमाश्रमे स्थितानथाह गम्भीर-गिरा स उत्सुकान् ॥११२॥

लोकोपकारमय योगसिद्धिचमत्कारोंसे चारों ओर सुदूर पर्यन्तके गाँवके धार्मिक लोग प्रतिवर्ष उस योगाश्रममें विविध यज्ञ करने लगे, जिससे आश्रमकी और भी प्रसिद्धि होगई। यज्ञान्तमें सुखसे आश्रममें बैठे लोगोंको गम्भीर वाणीसे वे सिद्ध ऐसा उपदेश देने लगे।

श्रुति-स्मृति-प्राप्त-पथेन गम्यतां विगीत-मार्गादचिराद् विरम्यताम् ॥
जनाः ! सदैवाऽऽप्त-वचो निशम्यतां निरर्गलं पाति मनो नियम्यताम् ॥११३॥

सज्जनो ! श्रुति स्मृतियोंसे प्राप्त पन्थसे जाना चाहिये। निन्दित मार्गसे अविलम्ब हटना चाहिए। सदैव आप्तवाक्य सुनना चाहिये। निरर्गल पतनशील मनको रोकना चाहिए।

शिवोऽर्च्यतामुद्धत-बुद्धिरस्यतां निरस्यतां वैरमपास्यतां घृणा ॥
उपास्यतां सद्गुरुरुज्झ्यतां भयं व्युदस्यतामाधिरपोह्यतां मदः ॥११४॥

शिवकी पूजा करनी चाहिए। उद्धत बुद्धिको त्यागना चाहिए। वैरभावको निकालना चाहिए। घृणाको हटाना चाहिए। सद्गुरुकी उपासना करनी चाहिए। भयको छोड़ना चाहिए। मानसी व्यथाको त्यागदेना चाहिए। मदका मोचन करना चाहिए।

निषेव्यतां मातुरथाऽर्च्यतां पितुः प्रसाद्यतां साधुरुदास्यतां खलात् ॥
प्रदीयतामन्नमधीयतां श्रुतं विधूयतां ध्वान्तमुदीर्यतामृतम् ॥११५॥

माताकी सेवा करनी चाहिए। पिताकी पूजा करनी चाहिये। साधु को प्रसन्न रखना चाहिए। खलकी उपेक्षा करनी चाहिए। अन्नजलका दान करना चाहिए। सच्छास्त्रोंका अध्ययन करना चाहिए। अज्ञान के अन्धकारको भगाना चाहिए। सत्य प्रिय बोलना चाहिए।

सुरक्ष्यतां गौः परिपोष्यतां कृषिर्विनीयतां सूनुरुदीयतां कुले ॥
विभाव्यतां भूतिरुदुह्यतां त्रपा निसर्गमार्गे हि शिवं शरीरिणाम् ॥११६॥

गौको सुरक्षा करनी चाहिए। कृषिका परिपोषण करना चाहिए। सन्तानको शिक्षा देकर विनीत बनाना चाहिए। कुलमें उन्नति करनी चाहिए। सिद्धविभूति तथा ऐश्वर्य धारण करना चाहिए। लाज रखनी चाहिए। वेदविहित निसर्गमार्गमें ही शरीरधारियोंका कल्याण है।

स नित्यमित्थं शिव-योगिपुङ्गवः श्रुति-प्रथीयांसि वचांसि शृण्वताम् ॥
समुन्मिषत्कल्मष-मूषि नैमिषे दिशन् बभौ सूत इवेद्ध-वर्चसा ॥११७॥

वे शिवयोगिपुङ्गव सिद्धशान्तिनाथजी नित्य प्रति इसी प्रकार श्रुति स्मृति शास्त्रोंमें प्रसिद्ध वचनोंसे उपदेश देते हुए नैमिषारण्यमें ऋषि सङ्घके मध्यस्थ पौराणिककशिरोमणि सूतके समान समिद्ध ब्रह्मवर्चससे श्रोताओंके सकल कल्मषोंका नाश करते हुए प्रचण्ड तेजसे शोभित हुए।

न शान्तिनाथेन कृतः परिग्रहः कदापि शिष्यस्य तथापि शिष्यताम् ॥
न शङ्कर-प्रेम-परीत-मानसं न शङ्कर-प्रेम-युगं स्वयं गतम् ॥११८॥

यद्यपि योगिराज शान्तिनाथजीने शिष्यादिका परिग्रह नहीं किया, रमलाकी भाँति सबको लौटाते रहे। तथापि भगवान् शङ्करभोलेके परम भक्त शङ्करनाथ फलेग्रहि तथा प्रेमनाथ दो शिष्य तो प्रारब्धवश स्वयं बन ही गये।

तयोर्द्वितीयो गुरु-पाद-पद्मयोरुपासनामेव चिकीर्षुरास्थितः ॥
प्रधीः प्रयातः प्रथमः प्रदेशतः प्रदेशमर्थी खलु विद्ययाऽऽढ्यया ॥११९॥

उन दोंनो शिष्योंमेंसे द्वितीय प्रेमनाथ गुरुसेवामें रहे। किन्तु प्रथम शिष्य शङ्करनाथ विद्योपार्जनके अनुकूल देशकालके परिशीलनमें लगे।

पुरा परिभ्रम्य ककुप्सु कासुचित् समागतो विक्रमपुर्युपाश्रयम् ॥
समाश्रयं योग-विधेर्ऋतम्भरा-भरं प्रदीप्तं नवलाख्य-योगिनम् ॥१२०॥

एवंप्रकारेण प्रथम कतिपय दिशाओंमें परिभ्रमण कर राजस्थान बीकानेरके नरेश गङ्गासिंहके राजगुरु ऋतम्भरा प्रज्ञावाले महायोगी नवलनाथजीके समीप पहुँचे, जो योगविधिके सम्यगाश्रय थे।

तदाशिषा शात-विशुद्ध-शेमुषिर्विशिष्य विद्यैक-गवेषणैषणः ॥
गतो हरद्वार-गतं गतैनसं स पूर्णनाथाश्रममेव योगिनाम् ॥१२१॥

उन योगिराज नवलनाथजीके आदेश उपदेश और आशीर्वादसे विशुद्ध कुशाग्रबुद्धि शङ्करनाथ फलेग्रहिने विशेषकर एकमात्र विद्याको ही गवेषणाके इच्छुक होनेसे हरद्वार मायापुर योगाश्रम श्रीपूर्णनाथ संस्कृतमहाविद्यालयमें प्रवेशकर विद्याध्ययनारम्भ किया।

स पूर्णनाथोत्थित-पूर्ण-विद्यया विमण्डिते पण्डित-संसदालये ॥
समाः समास्थाय कला इवोज्वला विधोर्बुधः षोडश पूर्णतामगात् ॥१२२॥

योगी शङ्करनाथफलेग्रहिने श्रीपूर्णनाथजीके करकमलोंसे स्थापित, मैथिलमहामहोपाध्याय द्रव्येशझा प्रमुख पण्डितमण्डलीसे मण्डित, योगाश्रममें षोडश वर्ष पर्यन्त अन्तेवासी होकर चन्द्रकलापुल्य उज्ज्वल विद्या ग्रहण कर पूर्णताको प्राप्त किया।

ततः समावर्त्य विरच्य काश्चन कृतीः कृती शास्त्र-विहार-पेशलः ॥
गुरुं स दर्भेशमथो स-केशवं स-योगिराजं सममोदयत् सखीन् ॥१२३॥

तदनन्तर समावर्तनकर नाना प्रकारकी रचनाओं (गोरक्षस्तवाञ्जलि, गोरक्षकाव्य, अमरकथा, अमरालोक, युक्तेन्दुवृत्तबिन्दु, चारों युगोंमें योगिराज, प्रमुख) से विद्याचार्य पं० द्रव्येशझाजी, पं० केशवमिश्र जी, योगिराज भीष्मनाथजी, स्मृतिनाथजी, ज्ञानिरामजी आदि गुरुजनों को और सतीर्थ्यमण्डलीको प्रसन्न किया। शास्त्रार्थमें भी प्रवीण हुए।

अखण्डि वैतण्डिक-तुण्डि-मण्डली व्यमण्डि दिङ्मण्डल-भूमि-मण्डली ॥
अखण्ड-पाण्डित्य-भृताऽपि चण्डिमा न मण्डितो डम्बर-डिण्डिमाऽऽरवैः १२४॥

शास्त्रार्थमहारथी योगी शङ्करनाथ फलेग्रहिने वैतण्डिक पण्डिततुण्डिमण्डलोका खण्डन कर दिङ्मण्डलकी भूमण्डलीको मण्डित किया और अखण्ड पाण्डित्ययुक्त होते हुए भी बाह्याडम्बरके डिण्डिमारवोंसे चण्डिमाको मण्डित नहीं किया।

विनीत-वेषैः स विनेयतोचितैः समाचिनोदुच्च-कलाः समुज्ज्वलाः ॥
जिघृक्षुरक्षुण्ण-कलाश्च काशिकामगादकुण्ठः सकलार्थ-काशिकाम् ॥१२५॥

किन्तु विनीत वेष भूषा भाषा आदि गुणोंसे अन्तेवासियोग्यतया समस्त विद्या कलाओंका आकलन कर लेने पर भी अधिकस्याधिकं फलम् समझ कर सकलार्थप्रकाशी काशीकी यात्रा की।

उपेत्य काश्यां हरिणायुतं हरं कृपालुमालून-समस्त-संशयम् ॥
दृढं समभ्यस्य विपक्ष-खण्डनं स खण्डखाद्यं सकलं व्यधाद् बुधः ॥१२६॥

काशी पहुँच कर योगी शङ्करनाथ फलेग्रहिने, शिष्यपरिषद्में लब्धप्रसिद्धि महामहोपाध्याय हरिहर कृपालुसे अवशिष्ट विशिष्ट शास्त्रग्रन्थियों का उन्मोचन किया। विपक्षखण्डन खड्ग तुल्य खण्डनखण्डखाद्यादियोंका अध्ययन किया।

स्थले स्थले येन विनेय-मण्डली चिराय गीर्वाण-गिराऽऽशु मण्डिता ॥
अमन्द-वृन्दारक-वृन्द-वन्दितं पदेन वृन्दापुर-मन्दिरं मुदा ॥१२७॥

तदनन्तर देशाटन करते हुए स्थान-स्थानमें अनेक अधिजिगांसु छात्रोंको वैदिक संस्कृत वाङ्मयमें प्रवीण करते हुए बलरामतुलसीपुर पाटनदेवीपीठमें आकर प्रतिष्ठा प्राप्त की (देवीपाटनके महन्त बने)।

विदात्र गोरक्ष-पदाङ्क-नीवृति स्थितेन नेपाल-मृगस्थली-मठे ॥
अनेन गोरक्ष-पदाब्ज-सेविना विनिर्मितं तन्नरसिंहयोगिना ॥१२८॥

यहीं पर्यन्त यह शान्तिचरित्र, जगज्ज्येष्ठ विश्वोत्तुङ्ग हिमवत्खण्ड गोरक्षराष्ट्र नेपाल सिद्धाचल मृगस्थली शिवगोरक्षनाथपीठनिष्ठ सरस्वतीस्नातक योगी नरहरिनाथ शास्त्री विद्यालङ्कार कविरत्नने वर्णन किया। आगे और भी शेष है।

कुतूहलं बालधियां प्रबोधयद् विदग्ध-बुद्धिं विदधन्निरुद्धताम् ॥
सुमङ्गलं शान्तिचरित्रमद्भुतं जगत्कृते शान्तिमिदं प्रयच्छतात् ॥१२९॥

बालबुद्धियोंमें कौतूहल प्रबुद्ध करता हुआ, विदग्धोंकी प्रौढ बुद्धियों को निरुद्धत करता हुआ, आमूलचूल मङ्गलमय और अद्भुतघटनायुक्त यह शान्तिनाथसिद्धचरित्र जगत्को शाश्वत शान्ति प्रदान करे।

गिरा चिरं शान्त-रस-प्रधानया निबद्धमिद्धं विधि-सिद्ध-योगिनः ॥
प्रसिद्धिमत् शान्तिचरित्रमुत्तमं तमोहरं भातु मनोहरं सताम् ॥१३०॥

शान्तरसप्रधान पदावली द्वारा निबद्ध एवं समिद्ध योगविधिसे सिद्ध योगीका उत्तम प्रसिद्धिमत् यह शान्तिचरित्र, अज्ञानमयतमोहर और सज्जनोंका मनोहर दीपक हो।

क्षिप्रानाथो विश्वनाथश्च यस्य दीक्षा-शिक्षा-देशिकौ योगिराजौ ॥
खन्नापुर्यां शारदापीठपाठी स व्यातानीच्छान्तिनाथस्य वृत्तम् ॥१३१॥

श्री क्षिप्रानाथ और श्री विश्वनाथ ये दो जिसके दीक्षागुरु तथा शिक्षागुरु योगिराज हैं, खन्ना शारदापीठपाठी (आदर्श सरस्वती संस्कृत महाविद्यालयके सरस्वतीस्नातक) योगी नरहरिनाथने यह शान्तिमय शान्तिचरित्र बनाया।

मृगस्थली स्थली पुण्या भालं नेपाल-मण्डले ॥
यत्र गोरक्षनाथेन मेधमालाऽऽसनीकृता ॥१॥
तत्र शान्तिचरित्रस्यानुवादः शूलिना कृतः ॥
नैपाले खर्षिखेलाब्दे, रसाभ्राभ्राक्षिवैक्रमे ॥२॥
शाके खनाथनागेन्दौ सानूक्ति कविनामुना ॥
शान्तं शान्तिचरित्रं तत् परिष्कृत्य प्रकाश्यते ॥१॥

(शिवम्)

कविसंस्तवः

अयमसाधारणपटिमा योगी नरहरिनाथो जन्मत एव प्रपञ्चाद-रलासीत्। शास्त्रमहिमानमेवाश्रौषीत्। ततः पश्चात् सत्यासत्यगवेषणा-परोऽध्ययनाध्यायने बुद्धिं प्रायुङ्क्त कांश्चिदब्दानन्तेवासिना मोमुदां श्रीपूर्णनाथविद्यालये हरद्वारे योगाश्रमे आतन्वानः सौजन्येन तेजेन। ततो वाराणसीमयासीत्। तत्रापि भूयसा श्रमेणाम्नायबन्धान् विविध-विषयकाननेकेषु प्रेक्षावत्सु प्रसितोऽध्यगीष्ट। एवं विधया रीत्या काश्चन समा अधिकाशि विद्यायां यापयित्वा विडौजःप्रस्थमासेधीत्। एवं क्रमशः पञ्चनदमेव स्थेयसाऽनेहसा वैखर्या स्वयाऽदध्वनत्। तत्र खन्नास्थसरस्वतीसंस्कृतादर्शमहाविद्यालये प्रधानाचार्यश्रीविश्वनाथ-शास्त्रिणश्चिररात्रायान्तेवासितामुपाढौकिष्ट। राजकीयां विश्व-विद्यालयीयां तत्रत्यां शास्त्रिपरीक्षामुदतरत्। छात्रसंसदि साचिव्यं दधद् मेधापाटवेन सर्वानेव विस्मापयन् कविसंमेलने नानाविधान् गद्यपद्यात्मकान् निबन्धानुपश्लोकयंश्च तत्रैव कविरत्न-कविभूषणा-शुकवि- महाकवि- विद्यालङ्कार-स्वरस्वतीस्नातक - प्रभृतीनुपाधीनपि समासीसदत्। औदार्य्यगाम्भीर्यधैर्यतपस्तितिक्षादिगुणैः सम्यगसस-रबत्। गोऽवनप्रसङ्गे दुर्यनमेवापीपिडत्। साधूपेक्षाविषयीभूतानेवा-ट्टिटत्। विद्वत्सु गुणानेवातूतुलत्। दुर्गुणानेवाददंशत। ईश्वरगोरक्ष-ध्यान एव चक्षुषी अचकाणत्। केनापि समं प्रकरणं विना नाशी-श्रुधत्। प्रत्यर्थिसार्त्थस्यापि गुणानजूघुषत्। गच्छन् भूमिमण्डल-मेवाद्राक्षीत्। सूक्तानि काव्यान्येवाजग्रन्थत्। परावरज्ञं सत्सम्प्रदाय-प्रसिद्धं देशिकेन्द्रं श्रीक्षिप्रानाथयोगीन्द्रं समित्पाणिरापिपद् योगनिष्ठं गरिष्ठम्।

ततः प्रभृत्यद्यावधि कविरेष शय्योत्थायं मनोविकारानेवाजी-गणत्। विद्याकवित्वाभिमानमामूलमुन्मूलयन् मायामोहौ सर्व-थैवाररहत्। निलिम्पवाण्यामेवाजगदत्। सत्कवितापद्यपुष्पप्रफुल्लो-द्यानक्रीड़ास्थल्यामेवाचुकुमारत्। तत्रैव चाववातत्। मुधा कमपि पुमांसं नामुमुआयत्। आचार्यान् सदैवोदैचिचत्। मित्राणि समि अचिचत्। गुरोर्दोषानतितिरायत्। सर्वत्र ग्रन्थेषु परमात्मानमज-

गवेषत्। शरीरस्य नश्वरतामेवापिस्फवत्। अन्तेवासिजनानां धारणा-वरणमेवातिस्तेनत्। शिवगोरक्षस्य भगवतो महिमानं स्मारं स्मारमतु-स्थूलत्। अदादेव स्वीयं वस्तु नार्तथत्। अधोजिगापयिषयैषसत्पथानां श्रीमौक्तिकनाथानां रसिकराजानां नाहानराजगुरूणां विसृत्वराधि-गतानां साहित्यसौहित्यौचितीं गामुकानामनुदिनमुदित्वरतां जिहानानां नाहानराज्ये बंहीयासमनेहसमटित्वायापयत्। अध्यापने तत्रत्या अध्या-पका अप्येनं व्यशिषन्। बहुत्र दुर्गमभूभागानटित्वा शतशःपुस्तकालयेषु-सहस्रशो नानालिपिभाषानिबद्धप्राचीनतमैतिहासिकानाम्नायबन्धान् भूर्जपत्र-ताडपत्र-ताम्रपत्र-कनकपत्र - शिलापत्रकमठपृष्ठपत्राभ्रकपत्रा-दिषुस्थितानपपारत्। बहुत्र स्थानेष्वटित्वा नाना संस्था विद्यासत्राण्य-सत्रत। सर्वत्रैवौजढत्। सर्वैः सहाऽससध्रायत्। उदासीनैः प्रार्थितः साधुवेलायां संस्तत्प्रार्थनावशंवदः सार्धचतुःसहस्रपद्यबद्धं तदीया-चार्यस्य महाकाव्यमाऽजगदत्। किन्तु विद्याधनं व्यर्थं नावव्ययत्। निजानां देशिकानां जनयितृणां विद्याया नीलकण्ठाभिधेयानां चरित्रं नीलकण्ठचरित्रनामकं काव्यमचीकरत्। छात्राणां परीक्षां दित्सूनामा-भीलमाकलय्य सांख्यकारिकाणामुपरि सांख्यवसन्तनामकं वसन्ततिल-कासु पद्यस्तोमं गोरक्षस्तुतिमञ्जरीं चान्यच्च गोरक्षग्रन्थमालायाः प्रथमपुष्पतया न्यबध्नात्। तथा योगिराजस्य राजस्थानप्रदेशगुरुता-मादधतोविरागवतः श्रीनवलनाथस्य महामान्त्रिकस्य चरितमपि कृति-विषयतां गामुकमतातरीत्। हरिपुरगुलेरादिनरेशहरिचन्द्रसंसारचन्द्रा-दीनां चन्द्रवंशावलीं त्रिगर्त्तसिद्धश्रवणनाथयोगिनः श्रवणनाथकथां तथा नानाविषयान् नानाम्नायबन्धान् व्यतानीत्। श्रीशान्तिनाथानां शान्तिप्रधानं शान्तिचरितं स्वेनेन संक्षेपत एव प्रकृतं व्यवर्णि। पद्य-भाषणैरनेकदा खन्नायामन्यत्र च सर्वान् सध्रीचोऽवातस्तम्भदेषकः कविः। गोरक्षादिस्वधर्मरक्षार्थं बहुवारमेष दुर्यवनैः सहाऽससङ्ग्रामत्। विपक्षिपक्षमच्छिच्छेदच्च। हार्देन सर्वानपि पुंसोऽपपर्णत्। सुमतिभिरेव कुमतीरभ्यषेणयत्। अनेकाभिर्युक्तिभिरपि बोधमेव पर्यवव्रढत्। छात्रावस्थायामन्ताक्षरवादे समस्यापूर्त्तौ चान्येषु च परीक्षाविशेषेषु

विश्वेष्वमालाद् विद्यार्थिषु। प्रातिजनीनतां प्रातिपथिकतां च चकासत् प्रत्यभात्। मालिका-यमला-काष्ठमण्डप-काशी-हरद्वार-खन्नादिषु गत्वा जन्मान्तरीय-दुरितदुर्वासनादलदलनं विद्यामजर्गृहीत् सुकृतरूपां तत्तद्देशिकेभ्यः। किमधिकं सोऽयमधुना श्रीबाणगुणभूभुजां गुणैराम्रेडितः संस्तवाशीराशिभिः समेधयन् भगवद्गोरक्षनाथस्य मेघमालासनीभूतां नवनागैरधिष्ठितां सिद्धाचलस्थां मृगस्थलीमधिवसति। तद्यावच्छ्लोकमासंसारमस्य यशो बहिर्नाकमपि व्यापरिष्यते। एषोऽनुग्रहो परमेश्वरस्यैव गोरक्षस्य—

सम्बध्नाति प्रबध्नाति जगदात्मा जगद्विभुः।
प्राणिनां सर्वलोकानां सम्बन्धं संयुनक्ति सः॥

एतस्य चरितस्य भूयस्यो घटना लोकान् पृणाना दैष्टिकान् पुनाना औग्नेत्रञ्चक्रुष्यो जाम्बवपाकपरिणतिं काव्यरसमाधुर्यस्य कामुकानां शुभंयिकां विदधति। निःश्रेयसदारगवं त्वचिसारधियामपि स्तादिति वशिम। एतस्य प्रकाशका (गाधिपुर गाजियाबाद) वास्तव्या दानशौण्डा व्यापारनाडिन्धमा लालाकवरसेन-मुन्सीलाल-रामऋषिपालबमेटाभिजना मयराष्ट्र (मेरठ) मण्डलस्थाः सन्ति धन्याः। पुनरावृत्तावत्र देवासबालगढ़वासिनो दानशीला जनाः सन्ति सहयोगिनः साधुवादार्हाः। प्राग्रूपशोधनादिमुद्रालयसहयोगिनो दाङ्गफलावाङ्गवास्तव्यौ योगिदशमीनाथनियमनाथौ तथा नयपालस्थः पण्डितभैरवप्रसादपौड्यालश्च सर्वेऽपि जीवका बर्हिलिहानां गोपायितारोऽभिनन्द्यन्ते।

वैक्रमे २००७ मृगस्थली शङ्करनाथः फलेग्रहिः

शुद्धिपत्रम्

अशुद्धम्	पृष्ठे	शुद्धम्	श्लोके
प्रतिष्टया	३	प्रतिष्ठया	११
स्थपायितुं	३	स्थापयितुं	१३
विप्लैवम्	४	विप्लवम्	१५
बदध	५	बद्ध	२२
तनु	७	तनुं	२९
भषितम्	९	भूषितम्	३८
बनागतः	९	वनाऽऽगतः	४०
तता प	१५	ततापि	६३
प्रमवेश	१५	प्रमथेश	६४
क्रमेणाऽस्य	१५	क्रमेणाऽस्य	६५
पस पय	१५	परम्पयः	६५
वरं	१५	परं	६६
मद्रया	१६	मुद्रया	६८

शान्तिचरित लिखते हुए विद्यालङ्कार कवि नरहरिनाथ

अखिल-भारत-वर्षीय-योगप्रचारिणी-प्रकाशनम्

प्रकाशकः—फलेग्रहिः शङ्करनाथ योगी शास्त्रार्थमहारथी

तथा

समग्र भक्तमण्डली, बालगढ़, देवास २, मध्यप्रदेश

शाके १८९० संवत् २०२५ कार्त्तिकी पूर्णिमा

मुद्रकः—श्रीहरि प्रेस, बागबरियार सिंह वाराणसी १.